स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी कविता में माँ

डॉ. चंद्रलेखा

स्वातंत्र्योत्तर कोंकणी कविता में माँ विषय पर लिखने से पहले कोंकणी कविता की स्वातंत्र्योत्तर पृष्ठभूमि को ऐतिहासिक, सामाजिक, राजकीय दायरे में, संक्षिप्त रूप में जाँचना आवश्यक है। गोवा को सन् 1961 में, दिसंबर की 19 तारीख को, पुर्तगाली शासन से मुक्ति मिली, जबकि पूरा भारतवर्ष 1947 में आज़ाद हो चुका था। गोवा के शासकों ने और जनता ने महाराष्ट्र

में विलीनीकरण की बजाय स्वतंत्र रहना स्वीकार किया और स्वतंत्रता के साथ-साथ राज्यभाषा कोंकणी भी उसका उचित स्थान प्राप्त कर पाई। इस दौर में गोवा की कोंकणी भाषा में बहुत सारे कवि अपना-अपना स्वर साध रहे थे। आरंभ के दौर में माँ के अलग-अलग रूप परंपरागत स्वरूप के ही द्रष्टव्य होते हैं, जिसमें धरती, प्रकृति, मातृभूमि, मातृभाषा जैसे विषय हैं। कहीं पर रूमानी प्रवृत्ति है तो कहीं पर यथार्थवादी दृष्टि है। यह प्रवृत्ति लगभग 1985 तक चलती है और उसके बाद रचनाकारों की दृष्टि में परिवर्तन दिखाई देता है, जिसमें महिलाओं की दृष्टि ज्यादा महत्वपूर्ण है। इस बदलाव का मूल कारण कामकाजी महिला का तनाव है। घर और ऑफिस की आपाधापी में माँ का दायरा विस्तृत हुआ है पर पिता पुराने दायरे में ही घूमता नज़र आता है। माँ ने आर्थिक जिम्मेदारी उठाने के लिए घर के बाहर कदम रखा पर बाप ने घर की जिम्मेदारी में माँ का हाथ बँटाना बहुत कम रूप में अपनाया। कन्नड लिपि में लिखनेवाले कोंकणी कवियों के संवेदन ज्यादा यथार्थपरक हैं जबकि गोवा की नागरी लिपि में लिखनेवाली धारा रूमानी संवेदन ज्यादा अपनाती दिखती है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए मैं कोंकणी कविता के हिंदी भावार्थ प्रस्तुत करती जाऊँगी जिससे साफ चित्र उभर सकें :-

शणै गोंयबाब-मधुर मेरा गोवा, सुंदर मेरा गोवा... (वज्रलिखणी/पृ. 1)

बयाभाव-कोंकण हमारा देश, माँ कोंकणी भाषा... (सड्यावयली फुलां/पृ. 3)

चा.फ्रा. डी, कोस्टा-उस तरफ माँ का रोना, कुछ नहीं खिलाने को मरती हूँ मैं। (सोश्याचे कान/पृ. 14)

मनोहरराय सरदेसाय-अमीर की माँ कहती/बच्चे ने कुछ नहीं खाया, गरीब की माँ कहती/बच्चे के लिए खाने को नहीं। (पिसोळी/पृ. 64)

फा. लुवीस बोतेल्हो-तुम्हारी और हमारी माँ सब की प्रेमाळ माँ (कानडी माती कोंकणी कवी/पृ. 13)

आंब्रोज डी, सोजा-माँ-बाप मातृभूमि/मातृभाषा प्रेमाळ। (कानडी माती कोंकणी कवी/पृ. 26)

चार्ल्स डी' सोजा–कोई मुझे नहीं देखता, जानबूझकर सब अनजान।/कब मरेगी यह बुढ़िया, सोचते सब मेहरबान। (कानडी मल कोंकड़ी कवी/ पृ. 38)

पांडुरंग भांगी–यही मिट्टी कभी बनती संहारक चंडी।

कभी रक्त पीनेवाली बनती काली... (चांफेल्ली सांज/पृ. 41)

नागेश करमली–....सह्याद्री के मूल से.....हे माँ, हे भूमि, माता मेरी। (वंश कुळाचे देणें/पृ. 39)

रॉन लुवीस–उपकार तुम्हारा कैसे मानूं ? तुम्हारा बलिदान.../ऋण कैसे उतारूं रक्त के उस मूल्य का? (कानडी माता कोंकणी कवी/पृ. 65)

फ्रांसीस सलदान्हा–संतोष पावें कोंकण माता। (कानडी माता कोंकणी कवी/पृ. 58)

जे.बी. मोरायस–तीन हाथ का टुकड़ा, तीसों तरफ तारतार।/साठ सालों का कीचड़, उसकी कृश देह ने है पचाया... (भितरले तुफान/पृ. 58)

प्रकाश पाडगांवकार–चरित्र-हीन शराबी मागदालीन/लोगों की हंसी मज़ाक झेलकर/लातें खाकर....अपने बेटे के साथ.../अनराधार रो रही है... (वास्कोयन/ पृ. 33)

सूर्या अशोक–अम्मा के कष्टों से मैं अनजान/अब मैं भी बनी हूँ अम्मा/अब आया समझ में मेरी/देवों की कृपा और अम्मा की माया भी। वर्णन के लिए छोटे पड़ते शब्द..... (काव्योद्यान/पृ. 43)

परंपरावादी और यथार्थवादी माँ-चित्रण में सन् 1985 के बाद बदलाव दृष्टिगत होता है। इस बदलते माहौल में बहुत कुछ बदला है। प्रकृति हरी-भरी थी अब लौहतत्वों के कणों से नहाकर लाल बन गई है। मांडवी, जुवारी में औद्योगीकरण का प्रदूषण है, फेफड़ों में लौहकणों का बसेरा है। जमीन से लेकर आसमान तक पर्यावरण में भी प्रदूषण है। छोटे-छोटे घर बड़े कंपाउंड थे। वहां बड़ी इमारतें और छोटे कमरे हैं। जमीन के दाम आसमान को छूते हैं और परिवार के लिए पति-पत्नी दोनों को घर का अर्थशास्त्र संभालने के लिए घर से बाहर जाना जरूरी हो गया। पिता के लिए यह बात

आम थी पर माँ सोचने पर मजबूर हो गई....नूतन साखरदांडे कहतीं हैं ''मेरे बच्चो! मैं मजबूर हूं तुम्हें आया के पास छोड़ जा रही हूँ। तुम्हारी सच्ची माँ कौन है ? जो पूरा दिन ऑफिस में काम करते-करते तुम्हारे बारे में सोचती रहती है वह या जो तुम्हारे साथ पूरा दिन रहती है वह ? मेरे नन्हे-मुन्नो, मुझे समझने की कोशिश करो, मैं हूँ तुम्हारी मजबूर माँ।''

इससे बड़ी मजबूरी और क्या होगी कि माँ अपने बच्चों से कहे कि ''मुझे समझने की कोशिश करो'' कौन किसको समझे ? बड़े छोटों को या छोटे बड़ों को? छोटों को छुटपन में ही बड़े होना पड़ता है। कैसी विवशता है ? यह विवशता कामकाजी महिला की है जिसका चित्रण अब मुखर होता दिखता है और समय की माँग है कि यह बदलाव कवयित्री ज़्यादा अनुभूत करती है। स्व. अमिता सुर्लकार ने माँ की परंपरागत छवि से इतर जो क्रांतिचेता छवि दी है वह कोंकणी साहित्य में निरंतर विकासमान है।